अवध के वसीकेदार

लेखक
डॉ० बैकुण्ठनाथ शर्ग़ा
एम.एससी., पीएच–डी.

SP
SHARGA PUBLICATIONS
Manohar Niwas
Kashmiri Mohalla
Lucknow - 226 003

- प्रकाशक :
  विनय शर्ग़ा
  394/20 कश्मीरी मुहल्ला
  लखनऊ–226 003

- प्रथम संस्करण : 2008

- मूल्य मात्र : 50/– रुपये

- सर्वाधिकार सुरक्षित

- मुद्रक :
  शारदा प्रिंटिंग प्रेस
  नया गाँव पूर्व, मॉडल हाउस,
  लखनऊ
  फोन : 2629327

समर्पण

श्रीमती राजवन्ती शर्ग़ा

(1917–2004)

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं कलेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

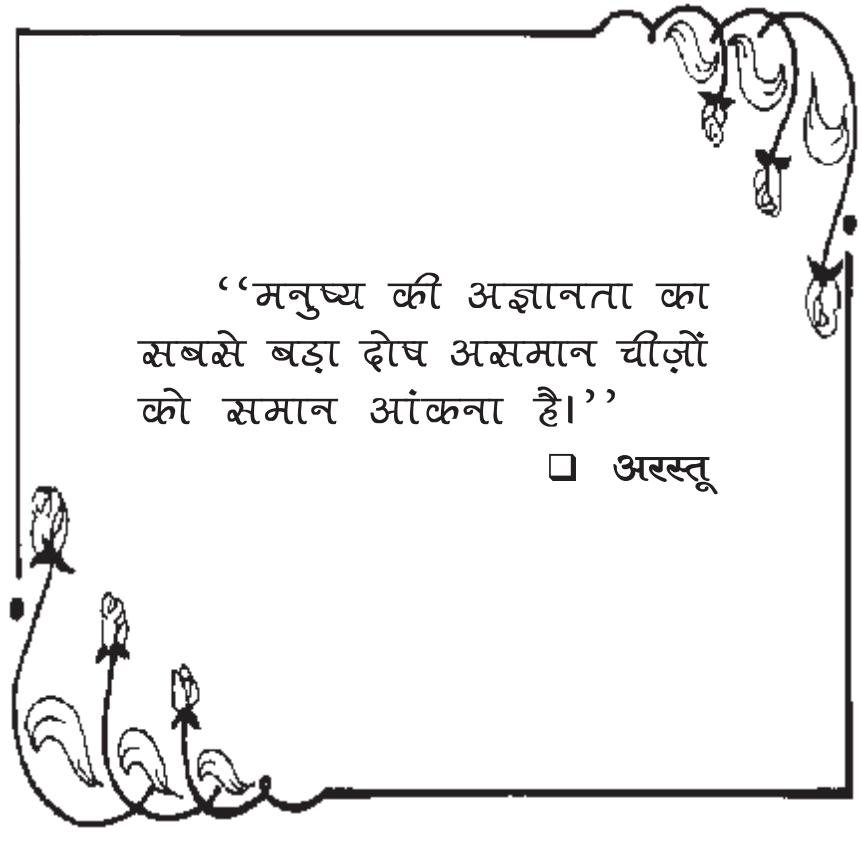

मंथन

यह सबसे बड़े आश्चर्य की बात है कि जब कभी लखनऊ नगर के इतिहास की चर्चा होती है तो सामान्यतः इतिहासकार नवाबी युग की भूलभूलैया में उलझ कर रह जाते हैं मानो उससे पूर्व लखनऊ नगर का कोई अस्तित्व था ही नहीं। यह वास्तव में हमारी संकुचित सोंच, और सदियों पुरानी मानसिक दासता का परिचायक है कि, अब भी हम उस मायाजाल से बाहर निकलकर स्वतंत्र रूप से चीज़ों का बिना किसी लाग–लपेट के विश्लेषण करने को तैयार नहीं हैं, और वही ढाक के तीन पात वाली पुरानी ढपली को पीट कर अपने दिल को बहला लेते हैं। नवाबी युग की जिस तहज़ीब का सारे विश्व में गुणगान किया जाता है वह वास्तव में तवायफ़ों के कोठों पर पोषित, और पल्लवित हुई। जिसने धीरे–धीरे उस दौर में सारे नगर को अपने आगोश में ले लिया।

यों तो पुरातत्वविदों ने लखनऊ का प्राचीन इतिहास खोज निकालने में अभी तक कोई विशेष सफलता नहीं प्राप्त की है पर जो प्रतीक और साक्ष्य वर्तमान में उपलब्ध हैं वे इस बात का स्पष्ट संकेत देते हैं कि जिसको हम तहज़ीब कहते हैं वह कभी हमारे संस्कार कहलाते थे और प्राचीन समय में लखनऊ नगर, आर्य संस्कृति की एक प्रमुख पीठ हुआ करता था जो अयोध्या नगरी का एक प्रकार से विस्तार था।

विदेशी पर्यटकों के द्वारा लिखे गये, कथा वृतान्त, टीले, प्राचीन मन्दिर, कुण्ड, घाट, पोखर तथा सरोवर इस बात के मूक गवाह है कि कभी यह नगरी ऋषियों तथा मुनियों की तपोभूमि रही है। यह पूरा क्षेत्र कभी घने वन से आच्छादित था जहां गोमती नदी के दक्षिणी तट पर लक्ष्मण टीले से लेकर रकाबगंज तक ऊंची पठारनुमा भूमि पर नगर बसा हुआ था। वीरवर लक्ष्मण ने माता सीता को बिठूर ले जाते समय यहां, अपने प्रवास के दौरान शेषनाग के मन्दिर तथा एक दुर्ग का निर्माण कराया था। इसका उल्लेख हमें लखनऊ गज़ेटियर में मिलता है। राम सूर्यवंशी राजा थे। रिवर बैंक कालोनी के निकट प्रतीक स्वरूप सूर्यकुण्ड विद्यमान है। इसका सन्दर्भ, अबुल फ़ज़ल ने आईना–ए–अकबरी में किया है।

लखनऊ नगर में गोमती नदी के उस पार चन्द्रिका देवी के प्राचीन मन्दिर के निकट माण्डूक्य ऋषि का आश्रम था। ये ही स्थान लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु की उपासना का स्थल था। नैमिषारण्य को अट्ठाईस हजार ऋषियों की तपस्थली कहा गया है जिसका इतिहास महाभारत के काल से जोड़ा जाता है। नगराम राजा नल का स्थान था जो नलग्राम से बिगड़ कर नगराम हो गया।

इसी प्रकार लखनऊ का कुड़िया घाट कौण्डिल्य ऋषि का आश्रम था जो कोणेश्वर महादेव के भक्त थे। उन्होंने दक्षिण पूर्वी द्वीप समूहों में जाकर वहां के निवासियों को सभ्य और सुसंस्कृत बनाया। उन्होंने कम्बोडिया पर अपना राज स्थापित किया और धीरे–धीरे अन्य द्वीपों पर भी अपना साम्राज्य स्थापित किया।

चौपटियों का पश्चिमभिमुख शिवमन्दिर, व नेहरु क्रास स्थित पंचमुखी हनुमान मन्दिर प्राचीन तंत्र परम्परा के प्रतीक हैं। नादान महल रोड के सिद्धनाथ मन्दिर का अति प्राचीन शिवलिंग, कचहरी रोड स्थित भैरव मन्दिर, मनकामेश्वर मन्दिर, शीतला देवी का मन्दिर तथा नगर के अनेक प्राचीन हनुमान मन्दिर इस नगर को आर्य संस्कृति की एक पीठ होने की कहानी स्वयं कह रहे हैं।

महाकवि तुलसीदास ने अपने लखनऊ में प्रवास के समय छाछूकुआं के प्राचीन हनुमान मन्दिर तथा लक्ष्मण टीले पर स्थित शेषनाग के मन्दिर में पूजा–अर्चना की थी। जिसे औरंगजेब ने 1685 में अपने लखनऊ आगमन पर ध्वस्त कराके वहां एक मस्जिद का निर्माण करा दिया जिसके कारण वहां रह रहे बाजपेई ब्राह्मण वहां से पलायन करके रानी कटरे में जाकर बस गये। यह भी एक विचित्र बात है कि जहां एक ओर हमारे देश के कुछ गुमराह नेतागण मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के अस्तित्व को नकारने में संलग्न हैं और उन्हें एक काल्पनिक चरित्र बता रहे हैं वहीं दूसरी ओर श्रीलंका की सरकार द्वारा गठित एक शोधकर्ताओं की टीम ने रामायण से सम्बन्धित श्रीलंका में 59 स्थानों को चिन्हित किया है। श्रीलंका की सरकार के अनुसार रैंगला नामक स्थान पर एक गुफा में रावण का ममी रखा है जिसे नाग जाति के लोग उठा ले गये थे। रावण के पास पांच विमान और उनके लिये पांच हवाई पट्टियां थीं जिन्हें हनुमान जी ने नष्ट किया था। नौरोलिया के एक स्थान पर 10 हजार वर्ष पुरानी सीता गोलियां प्राप्त हुई हैं जो उन चावलों की हैं जिन्हें सीताजी ने फेंक दिया था। रामसेतु उसी रामायण काल की एक कड़ी है। श्रीलंका सरकार ने भारत सरकार से इस सम्बन्ध में गहरायी के साथ एक विशेषज्ञों की टीम गठित कर शोध करने का आग्रह किया है।

अब सुधी पाठकों को स्वयं यह निश्चय करना है कि क्या वे तवायफों की तहज़ीब को अपने जीवन में वरीयता देना अधिक उचित समझेंगे या उन संस्कारों को आत्मसात करने का प्रयत्न करेंगे जिसके लिये कभी यह ऐतिहासिक नगरी तपोभूमि के रूप में प्रतिष्ठित थी और आर्य संस्कृति की एक प्रमुख पीठ थी।

इस पुस्तक के लेखन के लिये 10 वर्ष का कठोर परिश्रम करके विभिन्न स्रोतों से दुर्लभ सामग्री जुटाई गई है जिसमें मुझे बबीता बसाक का महत्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ अन्यथा मेरे लिये कदाचित यह दुष्कर कार्य करना सम्भव नहीं हो पाता। इन सब प्रयासों के बाद भी यदि अनजाने में मुझसे कोई भूल या त्रुटि रह गई हो तो उसके लिये मैं क्षमा प्रार्थी हूं।

सच्चाई छुप नहीं सकती कभी झूठे उसूलों से।
ख़ुशबू आ नहीं सकती कभी काग़ज़ के फूलों से॥

'मनोहर निवास'
कश्मीरी मुहल्ला
लखनऊ–226 003
दूरभाष : 0522–2267146
26 जनवरी 2008

❑ डॉ. बैकुण्ठनाथ शर्ग़ा
अवध के वसीकेदार

किसी से मांग कर हम रौशनी नहीं लाते।
हमारे घर में हमारा चराग़ जलता है ॥

प्रस्तावना

वसीका वास्तव में अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अभिप्रायः लिखित, अनुबन्ध–पत्र या इक़रारनामे से है। वसीका नवाबी युग में अवध के शासकों तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मध्य समय–समय पर की गई सन्धियों के अनुपालन में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा दिया जाता है। सम्पूर्ण भारत में केवल लखनऊ ही एकमात्र ऐसा ऐतिहासिक नगर है जहाँ हुसैनाबाद में वसीका आफिस स्थित है, जहाँ इस वसीके से सम्बन्धित, अभिलेख सुरक्षित रखे हुए हैं। जिनके आधार पर वसीके का वितरण किया जाता है। यह शाही वसीका पाने वाला व्यक्ति वसीकेदार कहलाता है। अवध के नवाबों तथा उनके आश्रितों के वंशज बड़े गर्व के साथ प्रतिमाह इस वसीके को लेने के लिये जाते हैं। कुछ वसीकेदार जितना वसीका पाते हैं उससे कहीं अधिक धन वह उसको प्राप्त करने में व्यय करते हैं जो एक प्रकार से लोक तंत्र में सामन्तवादी मानसिकता का परिचायक है। यहाँ इस सम्बन्ध में यह बताना कदापि अनुचित न होगा कि भारत के सन् 1947 में स्वतंत्र होने के पश्चात् तत्कालीन गृह मंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल के, आश्वासन पर जब देश के अनेक राजाओं और महाराजाओं ने एक लिखित अनुबन्ध द्वारा अपनी रियासतों का भारत के गणराज्य में विलय किया था तो उनको कुछ विशेष अधिकार तथा प्रतिमाह प्रीवी पर्स देने का प्राविधान किया गया था पर बाद में श्रीमती इन्दिरा गांधी के प्रधानमंत्री काल में भारत सरकार ने लोक तंत्र की दुहाई देकर इसको 1967 में समाप्त कर दिया क्योंकि कदाचित वह समतामूलक समाज की परिकल्पना से ताल–मेल नहीं खा पा रहा था पर उसके एकदम विपरीत समाजवादी व्यवस्था में वसीके का बांटना आज भी जारी है। अवध में इस वसीका बांटने की प्रथा का चलन कब, क्यों और किन राजनीतिक परिस्थितियों में प्रारम्भ हुआ यह स्वयं अपने आप में एक बहुत ही रोचक विषय है, जिसे समझने के लिये हमें इससे सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं का गूढ़ अध्ययन करना आवश्यक है।

अंग्रेजों का भारत में आगमन

यह सर्वविदित है कि अंग्रेज़ भारत में मुख्य रूप से व्यापार करने के उद्देश्य से आये, जिसके लिये उन्होंने इंग्लैण्ड की महारानी एलिजेबेथ प्रथम (1553–1603) के हस्ताक्षर युक्त चार्टर के द्वारा 31 दिसम्बर सन् 1600 को लन्दन में ईस्ट इण्डिया कम्पनी नाम की एक संस्था का गठन किया। सर टॉमस रो नाम का प्रथम अंग्रेज राजदूत मुग़ल सम्राट जहांगीर (1605–1647) के शासनकाल में सन् 1618 के आस–पास लन्दन से भारत आया और मुग़ल सम्राट जहांगीर से उसने व्यापार करने की अनुमति प्राप्त की।

उस समय तक भारत में फ्रांसीसी और पुर्तगाली व्यापार करने के लिये अपनी चौकियां स्थापित कर चुके थे। अपने–अपने व्यापारिक हितों को लेकर अंग्रेज़ों, फ्रांसीसियों तथा पुर्तगालियों के मध्य निरन्तर युद्ध होते रहते थे, जिसके कारण अंग्रेज़ों ने दक्षिण भारत के स्थान पर सन् 1690 में कलकत्ते (कोलकता) में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का मुख्यालय स्थापित किया और धीरे–धीरे भारत में अपनी पैठ मज़बूत की और अपनी सुरक्षा के लिये यूरोपियन सैनिकों की टुकड़ियों की तैनाती आरम्भ की।

भारत में मुगल़ शासन की स्थापना

मुगल शब्द फ़ारसी भाषा का है, जिसका प्रयोग मंगोल के लिये किया जाता है। बाबर जिसने सन् 1526 में भारत में मुग़ल साम्राज्य की नींव रखी, एक तूरानी मंगोल था जो कहा जाता है मंगोलिया के महान योद्धा चंगेज़ खाँ (1162–1206) का वंशज था। उसने काबुल को अपनी राजधानी बनाया पर उसके पौत्र अकबर ने मंगोलों की परम्पराओं से हटकर अपने को भारतीयता में ढालने के प्रयास में आमेर रियासत की हिन्दू राजपूत राजकुमारी जोधाबाई के साथ विवाह किया और दीन–ए–इलाही नाम से एक नया धर्म चलाया। उसने प्रशासन को चुस्त तथा दुरूस्त करने के लिये भारत को प्रथम बार 12 सूबों में विभाजित किया और हर सूबे का मुखिया एक सूबेदार नियुक्त किया। अकबर के पुत्र जहांगीर ने अवध में बिजनौर के शेख़ अब्दुल रहीम को एक बहुत बड़ी जागीर प्रदान की, जिसकी सुरक्षा के लिये शेख़ अब्दुल रहीम ने सन् 1620 के आस–पास लखनऊ में गोमती नदी के दक्षिणी तट पर एक ऊँचे टीले पर मच्छी भवन नाम के एक विशाल किले का निर्माण कराया।

कहा जाता है कि इस किले में 26 द्वार थे और हर द्वार पर एक मछली का जोड़ा बना था। कुल 52 मछलियां होने के कारण इसको मच्छी बावन कहते थे जो बाद में बिगड़ कर मच्छी भवन बन गया। इसका मुख्य द्वार शेखन दरवाज़ा कहलाता था जिस पर शेखों की शक्ति के प्रतीक के रूप में एक तलवार लटकती रहती थी।

औरंगज़ेब की सन् 1707 में मृत्यु के पश्चात् दिल्ली की मुग़ल सत्ता की हनक धीरे–धीरे कम होने लगी और जिसके कारण देश के विभिन्न सूबों पर दिल्ली सरकार की पकड़ शिथिल पड़ने लगी, जिसका परिणाम यह हुआ कि जब मोहम्मद शाह रंगीले (1719–1747) सम्राट बना तो लखनऊ के शेख़ज़ादों ने उसके विरूद्ध विद्रोह कर दिया, जिससे निपटने के लिये मोहम्मद शाह रंगीले ने अपने नायब वज़ीर सआदत खाँ बुरहानुलमुल्क को, जो आगरा के सूबेदार थे और जाटों की बढ़ती हुई शक्ति से टक्कर ले रहे थे, वहां से हटाकर 1 सितम्बर सन् 1722 को अवध का सूबेदार बना कर भेजा ताकि शेख़ज़ादों को उचित सबक सिखाया जा सके।

अवध में नवाबी युग का सूत्रपात

अवध का सूबेदार गिरधर नागर बढ़ती हुई शेख़ज़ादों की शक्ति से निपटने के लिये कुछ अधिक प्रभावशाली नहीं सिद्ध हो पा रहा था क्योंकि वह अपना अधिक समय दिल्ली में अपनी गोटें फिट करने के लिये व्यतीत करता था जिसके कारण प्रशासन पर उसकी पकड़ एकदम ढ़ीली पड़ गई थी। अवध के नये नियुक्त नायब वज़ीर सआदत खाँ बुरहानुलमुल्क ने आलमनगर होते हुए सहादतगंज की ओर से लखनऊ में प्रवेश किया। उसने मंसूरनगर में शेख़ज़ादों को बड़ी चतुराई के साथ बात–चीत के लिये आमंत्रित किया और उनके लिये रात्रि में एक बड़ी दावत का प्रबन्ध किया गया, जिसमें नाना प्रकार के मुग़लाई

सआदत खाँ बुरहानुलमुल्क

व्यंजन और पकवान बनवाये गये। कुछ व्यंजनों में हल्का सा जमाल गोटा का पुट भी दे दिया गया। शेख़ज़ादों की आवभगत में किसी प्रकार की कोई कमी न रह जाये इसका विशेष रूप से ध्यान रखा गया। मदिरापान के साथ–साथ मनोरंजन के लिये तवायफों का भी सहारा लिया गया। जब शेख़ज़ादे मदिरा पान कर के नशे में टुन्न होकर तवायफ़ों के साथ रंगरेलियाँ मनाने में मशगूल थे और मौज–मस्ती का भरपूर आनन्द ले रहे थे और उनके रक्षक लोटा परेड करने में लगे हुए थे तभी अचानक सआदत खाँ बुरहानुल मुल्क ने अपने सैनिकों के साथ मच्छी भवन के किले पर एक भयंकर आक्रमण कर दिया और उस पर अपनी विजय पताका फहरा दी। इस प्रकार अवध में नवाबी शासन की नींव पड़ी। पर कदाचित भय के कारण उन्होंने लखनऊ के स्थान पर बंगला को अपनी राजधानी बनाना अधिक उचित समझा कि कहीं सुन्नी शेख़ज़ादे पुनः संगठित होकर उनके विरूद्ध विद्रोह न कर दें क्योंकि उन्होंने शेख़ज़ादों को छल–कपट से परास्त किया था। यहीं से लखनऊ में शिया–सुन्नी फ़साद ने जन्म लिया क्योंकि सूत्रों के अनुसार इससे पूर्व लखनऊ में ईरानी नस्ल के शियों की आबादी नहीं थी।

इस प्रकार अकस्मात विजय के पश्चात् सआदत खाँ बुरहानुलमुल्क के हौंसले बहुत बुलन्द हो गये और वह दिल्ली के तख्त पर बैठने का दिवास्वप्न देखने लगे क्योंकि मुग़ल सम्राट मोहम्मद शाह रंगीले अपना अधिक समय औरतों की सोहबत में व्यतीत करता था और शासन करने में उसकी कोई रूचि नहीं थी। ऐसा कहा जाता है कि उसके दरबार में हर समय लगभग 200 अर्धनग्न युवतियां उसके मनोरंजन के लिये तत्पर रहती थीं। सआदत खाँ बुरहानुलमुल्क ने अपनी मनोकामना को पूर्ण करने के लिए एक षड्यंत्र रचा और एक गुप्त संदेश अपने वतन फ़ारस के शासक नादिर शाह को भेजा कि अब उपयुक्त समय आ गया है कि जब वह दिल्ली पर आक्रमण कर दे। उसको हर प्रकार की सहायता प्रदान करने का भी आश्वासन दिया गया। नादिर शाह ने इस सुनहरे अवसर का भरपूर लाभ लेने के लिये सन् 1739 में दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। मोहम्मद शाह रंगीले इस आक्रमण का डट कर मुकाबला करने के लिये मानसिक

रूप से बिलकुल तैयार नहीं था अतः वह मैदान छोड़ कर भाग गया। नादिर शाह ने तैश में आकर अपने सैनिकों को कत्ले आम करने का फरमान जारी कर दिया। उसके बर्बर सैनिकों ने 3 दिन तक दिल्ली की गलियों में जम कर लूट–पाट, निर्मम हत्याऐं और अबलाओं का शील भंग किया। दिल्ली की गलियाँ अबोध व्यक्तियों के खून से लाल हो गयीं। मोहम्मद शाह रंगीले के कुछ विश्वासपात्र दरबारियों ने उसको सआदत खाँ बुरहानुलमुल्क की हरकत से जब अवगत कराया तो उसने उनको उचित दण्ड देने का मन बनाया। जब इसकी सूचना सआदत खाँ बुरहानुलमुल्क को मिली तो उसने भयभीत होकर 20 मार्च सन् 1739 को विषपान करके आत्महत्या कर ली कि कहीं मोहम्मद शाह रंगीले उसे फांसी पर न लटका दें।

सआदत खाँ बुरहानुलमुल्क की इस आकस्मिक मृत्यु के पश्चात् अवध की सूबेदारी को लेकर उनके भतीजे शेरजंग और भाँजे तथा दामाद सफ़दरजंग के मध्य विवाद हो गया। इस विवाद का निपटारा नादिर शाह ने किया जिसके लिये उसको सफ़दरजंग ने लगभग 50 लाख रुपये नज़राने और शुकराने के रूप में अदा किये और शेरजंग को शान्त करने के लिये उसको कश्मीर का सूबेदार बना कर दिल्ली से दूर भेज दिया गया। यह इतिहास में एक बिलकुल विचित्र घटना थी, जिसमें एक विदेशी आक्रमणकारी ने धन लेकर सफ़दरजंग को अवध का सूबेदार बनाया, जिसके कारण अवध के प्रशासन पर सफ़दरजंग की पकड़ कभी भी मज़बूत नहीं बन पाई और पठान, तुर्क तथा मुगल सरदार निरन्तर उनके विरूद्ध षड्यंत्र रचते रहे।

पठानों का विद्रोह

मुग़ल सम्राट अहमदशाह (1748–1754) के शासनकाल में पठानों और तुर्कों से लोहा लेते हुए राम चितौनी के युद्ध में सफ़दरजंग को पराजय का मुंह देखना पड़ा और वे निराशा और हताशा का शिकार हो गये। उनकी पत्नी सद्रेजहां बेगम ने तब सूझ–बूझ का परिचय देते हुए अपने पुत्र शुजाउद्दौला को मोर्चा सम्भालने को कहा और अपने प्रभाव का प्रयोग करते हुए 10,000 सैनिकों की फ़ौज तैयार कर पठानों और तुर्कों पर विजय

प्राप्त की और उनके विद्रोह को कठोरता के साथ दबा दिया। इस घटना से अवध में सद्रेजहां बेगम का काफी दबदबा हो गया। सफ़दरजंग की अधिक अवसाद हो जाने के कारण सुलतानपुर जनपद में 5 अक्टूबर सन् 1754 को पेपराघाट कस्बे में गोमती के किनारे मृत्यु हो गई। उनके शव को फ़ैजाबाद लाकर गुलाब बाड़ी में दफ़्न कर दिया गया। बाद में उनके पुत्र शुजाउद्दौला ने उनके लिये दिल्ली में एक भव्य मकबरा निर्माण कराया जहां उनके शव को पुनः दफ़्न करा दिया गया।

इस प्रकार सन् 1754 में शुजाउद्दौला ने अवध के शासन की बागडोर अपने हाथों में संभाली। वे काफी आशिक मिज़ाज व्यक्ति थे और औरतों में विशेष रूचि रखते थे। इस नाते उनके हरम में अनेक जातियों की औरतें और रक्कासायें थीं। पर उनकी मुख्य पत्नी फ़ारस की उम्मातुल ज़ोहरा थीं जो दिल्ली दरबार के सरदार मोतमाउद्दौला नवाब इशहाक खाँ की पुत्री थीं, जिनसे उनका निकाह सन् 1744 में हुआ था। वे बाद में बहू बेग़म के नाम से प्रसिद्ध हुई, जिनको मुग़ल सम्राट मोहम्मद शाह रंगीले ने अपनी दत्तक पुत्री बना रखा था। इस नाते अवध में उनकी काफ़ी हनक थी। वे अवध की बेग़मों में सबसे अधिक अमीर, व्यवहार कुशल और राजनीति में दक्ष महिला थीं। उनकी जागीरें सूबे के अनेक जनपदों में फैली हुई थीं जैसे गोंडा, जायस, खरा, अल्टा, रुक्का, परसीदीपुर, मोहनलालगंज, सलोन, समानान्तर, नवाब गंज, गढ़ढ़ैया ख़ास, बेग़म बारी, मीरगंज और सिन्ध जिनकी मालगुज़ारी उनके कारिन्दे वसूलते थे।

इन तमाम जागीरों की उचित देख–भाल के लिये बहू बेग़म की 10,000 नियमित और भाड़े के सैनिकों तथा 2000 घुड़सवारों की एक शाही फौज़ थी, जिसकी कमान अहमद अली के हाथों में थी और जिसमें पंडित लक्ष्मी नरायण कौल शर्गा तथा पंडित निरंजन दास कौल शर्गा जैसे पराक्रमी और तलवार भांजने तथा घुड़सवारी में निपुण योद्धा थे। इसके साथ–साथ सरयु नदी में गश्त करने के लिये 25 नावें थीं। कुल मिलाकर वे आर्थिक रूप से और सैन्य शक्ति में काफ़ी मज़बूत थीं, जिसके कारण अवध के शासन पर उनकी अच्छी पकड़ थी और एक प्रकार से उनकी ही हुकूमत चलती थी।

प्लासी का युद्ध और अंग्रेज़ों का सत्ता में हस्तक्षेप

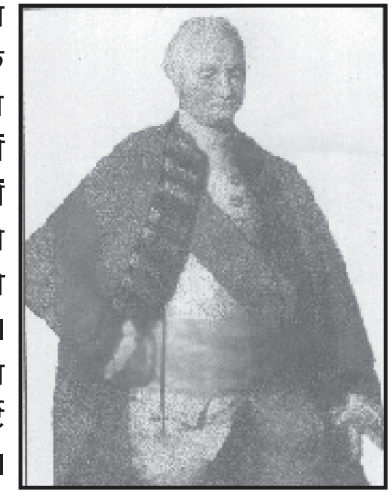

बंगाल का प्रथम अंग्रेज़ गवर्नर
रार्बट क्लाईव

सन् 1756 में बंगाल का नवाब सिराजुद्दौला ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कुछ अंग्रेज़ अधिकारियों की हरक़तों से नाराज़ हो गया। उसने कुछ अंग्रेज़ अधिकारियों को पकड़ कर एक छोटी सी कोठरी में ठूस दिया, जहाँ दम घुटने के कारण उनकी अकाल मृत्यु हो गयी। अंग्रेज़ों में इसको The Black hole of Calcutta की संज्ञा दी। सिराजुद्दौला ने अंग्रेज़ों के फ़ोर्ट विलियम्स पर भी कब्जा कर लिया। उस समय राबर्ट क्लाइव कम्पनी का चार्ज डी अफ़ेयर्स था। उसने सिराजुद्दौला के सिपहसालार मीर जाफ़र से मिलकर जवाबी कार्यवाही की और 2 जनवरी 1757 को प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला को मार डाला और बाद में मीर जाफ़र को उसके दामाद मीर क़ासिम को प्रलोभन देकर मौत के घाट उतार दिया। रार्बट क्लाईव ने तब सम्पूर्ण कलकत्ते पर कब्ज़ा करके अपने को बंगाल का गवर्नर घोषित कर दिया। इस प्रकार भारत की राज सत्ता में अंग्रेज़ों का हस्तक्षेप प्रारम्भ हुआ। इस 1757 के प्लासी के युद्ध को बहुत से इतिहासकार आज़ादी की पहली जंग मानते हैं, जिसके कारण भारत के इतिहास में एक नया मोड़ आया।

अंग्रेज़ों की इस बढ़ती हुई सैन्य शक्ति से अवध में सनसनी फैल गई और अवध के नवाब शुजाउद्दौला को अपनी सुरक्षा को लेकर चिंता सताने लगी कि अंग्रेज़ कहीं अवध पर आक्रमण न कर दें। वे हर समय तनाव ग्रस्त रहने लगे। उनकी इस मनोदशा को भांपकर उनकी माँ सद्रेजहां बेगम ने उनको सलाह दी कि अब उचित समय आ गया है जब वे बंगाल के नवाब मीर कासिम से मिलकर अंग्रेजों को बंगाल की खाड़ी में खदेड़ कर बंगाल को उनके चंगुल से मुक्त करा दें। इस कार्य योजना को मूर्ति रूप प्रदान करने के लिये नायब वज़ीर शुजाउद्दौला ने मुगल सम्राट शाह आलम,

बंगाल के नवाब मीरकासिम तथा बनारस के राजा बलवन्त सिंह के साथ एक गुप्त मंत्रणा की फिर 13 मई सन् 1764 को पटना के निकट शुजाउद्दौला ने मुनरो की अंग्रेजी सेना पर आक्रमण कर दिया पर अंग्रेजों द्वारा भयंकर गोलाबारी करने से नायब वज़ीर की शाही फौज को पीछे हटना पड़ा। अंग्रेजों ने इस युद्ध के पश्चात् मीर कासिम और शाह आलम को गिरफ्तार कर लिया। बनारस का राजा बलवन्त सिंह अंग्रेजों से मिल गया।

बक्सर का युद्ध

शुजाउद्दौला

नायब वज़ीर शुजाउद्दौला ने तब पीछे हटकर अवध और बिहार की सीमा से लगे सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बक्सर के मैदान में, अपना डेरा जमाया जहां उसकी शाही फ़ौज और अंग्रेज़ों के मध्य 23 अक्टूबर सन् 1764 को एक भीषण युद्ध हुआ जिसमें शुजाउद्दौला को पराजय का मुंह देखना पड़ा और वह इतना अधिक भयभीत हो गया कि कहीं अंग्रेज उसे पकड़कर फांसी पर न लटका दें इसलिये वह अवध आने के स्थान पर भागकर फर्रुख़ाबाद में छुप गया। इसी बीच रार्बट क्लाईव लन्दन से भारत आ गया और उसने शुजाउद्दौला को पकड़ने के लिये दबाव बनाना प्रारम्भ कर दिया। तब उनकी पत्नी बहू बेगम ने अपने पति की राजगद्दी को बचाने के लिये एक कुशल राजनीतिज्ञ की भांति अपने विश्वासपात्र दूतों द्वारा रार्बट क्लाईव से सम्पर्क साधा और सुलह–समझौते की पेशकश की पर रार्बट क्लाईव अवध से सन्धि करने के पूर्व मुगल सम्राट शाह आलम के साथ सन्धि कर लेना चाहता था। फलतः 9 अगस्त सन् 1765 को शाह आलम और अंग्रेजों के मध्य एक सन्धि हुई जिसके अनुसार गोरखपुर, बलिया और बनारस को अंग्रेजों के अधीन कर दिया गया तथा बंगाल, बिहार और उड़ीसा प्रान्तों की दीवानी, अंग्रेजों को प्राप्त हो गयी।

बक्सर के युद्ध में पंडित लक्ष्मी नरायण कौल शर्ग़ा तथा उनके अनुज भ्राता पंडित निरंजनदास कौल शर्ग़ा ने नायब वज़ीर शुजाउद्दौला को सुरक्षा कवच प्रदान करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी जिसके कारण ये दोनों भ्राता बहू बेगम के बहुत अधिक विश्वासपात्र बन गये। इस युद्ध को अब कुछ इतिहासकार स्वतंत्रता की प्रथम लड़ाई के रूप में देखते हैं।

अंग्रेज़ों की अवध में घुसपैठ

अवध के नायब वज़ीर शुजाउद्दौला ने पहले तो मराठों की सहायता से 3 मई 1765 को अंग्रेजों पर आक्रमण कर दिया फिर पराजय का सामना करने पर फ़तेहगढ़ के अहमद खां वंगश से सहायता का आग्रह किया। इसमें सफल न होने पर विवश होकर उनको 16 अगस्त सन् 1765 को रार्बट क्लाईव के साथ सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े। इसमें युद्ध के हर्जाने के रूप में शुजाउद्दौला को कम्पनी के कोषागार में 50 लाख रुपये भरने पड़े। जो उनकी पत्नी बहू बेगम ने अपने अमूल्य आभूषणों तथा अपनी ज़ागीरों से प्राप्त धनराशि से अदा किये। शुजाउद्दौला पर निगरानी के लिये फ़ैजाबाद में एक अंग्रेज रेजीडेन्ट की नियुक्ति और साथ ही साथ अंग्रज़ी सेना की टुकड़ियों की तैनाती की गयी। इलाहाबाद पर भी अंग्रेजों का कब्जा हो गया।

इस प्रकार अंग्रेज़ों की बंगाल के पश्चात् अवध में पीछे के दरवाज़े से घुस–पैठ प्रारम्भ हुई और धीरे–धीरे उनका वर्चस्व इतना अधिक बढ़ गया कि वे राजसत्ता में एक निर्णायक भूमिका अदा करने लगे। वे अपनी सुविधानुसार नवाबों को राज सिंहासन पर बैठाने और उस पर से उतारने लगे। नवाबों ने भी अपनी राजगद्दी को बरकरार रखने के लिये अंग्रेज़ों का जम कर मालीदन करना अधिक उचित समझा और वे अंग्रेज़ों के हर सुख और सुविधा का पूरा ध्यान रखने लगे। कोई भी नवाब अंग्रेज़ों के विरुद्ध मोर्चा खोलने का पुनः साहस नहीं जुटा सका। नवाबों ने तलवार उठाने के स्थान पर औरतों की संगत करने को ही अपनी नियति मान लिया। वे एक प्रकार से अंग्रेज़ों के पिट्ठू बन गये और हर युद्ध में अंग्रेज़ों की धन और बल से खुलकर सहायता करने लगे। अंग्रेज़ भी नवाबों को कठपुतलियों की भांति अपने इशारों पर नचाने लगे। अंग्रेज़ों ने अपने हितों के लिये अवध

के संसाधनों का जमकर दोहन किया। यदि अवध के नवाब यह सब न करते तो कदाचित आज भारत का इतिहास कुछ और होता और सम्भवतः भारत बहुत पहले स्वतंत्र हो चुका होता।

मैसूर पर आक्रमण

अंग्रेज़ों ने शुजाउद्दौला से सहायता लेकर सन् 1767 में मैसूर पर प्रथम आक्रमण कर दिया जहाँ हैदर अली ने सन् 1761 में अपने को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया था। पर इस युद्ध में अंग्रेज़ों को पराजय का सामना करना पड़ा। अंग्रेज़ों ने तब अपनी सैन्य शक्ति को और अधिक संगठित करके सन् 1771 में रोहिल्ला सरदार रहमत खाँ पर दबाव बनाया और उसे सन्धि करने के लिए विवश किया जिस पर नागपुर, इन्दौर और ग्वालियर के मराठे सरदार बराबर आक्रमण करते रहते थे।

भारत में कम्पनी की बढ़ती हुई ताकत पर उचित नियंत्रण के लिए ब्रिटेन की संसद ने सन् 1771 में एक कानून पास किया, जिसके तहत कम्पनी का गवर्नर का पद उच्चीकृत करके गर्वनर जनरल कर दिया गया और सन् 1772 में वारेन हेस्टिंग्स को प्रथम गर्वनर जनरल बना कर भारत में भेजा गया। वारेन हेस्टिंग्स ने शुजाउद्दौला की सहायता से सन् 1773 में रूहेलखण्ड पर कब्जा करके उसे अवध में मिला लिया। इस घटनाक्रम से शुजाउद्दौला काफ़ी तनावग्रस्त रहने लगे और उनकी 26 जनवरी सन् 1775 को केवल 46 वर्ष की आयु में हृदय घात के कारण मृत्यु हो गयी।

आसफ़उद्दौला तब सन् 1775 में अवध के शासक बने पर उन्होंने अपने दरबार में उन व्यक्तियों को तरजीह देना प्रारम्भ कर दिया, जिनसे उनकी माँ बहू बेग़म को सख़्त एतराज़ था। उनके इस व्यवहार से उनके और उनकी माँ बहू बेग़म के रिश्तों में दरार आ गई। आसफ़उद्दौला ने अवध का शासन सुचारू रूप से चलाने के लिये अपनी माँ बहू बेग़म और दादी सद्रेजहां बेग़म से एक बड़ी रकम देने का आग्रह किया जिसे दोनों बेगमों ने ठुकरा दिया। इससे उनमें और उनकी माँ बहू बेग़म के रिश्तों में और अधिक खटास आ गई और इन दोनों बेग़मों के प्रभाव से बचने के लिये आसफ़उद्दौला में तब फ़ैजाबाद के स्थान पर लखनऊ को अपनी राजधानी बनाया।

वारेन हेस्टिंग्स ने अपनी फूट डालो और राज करो नीति के तहत आसफ़उद्दौला के साथ 1775 में सन्धि कर इलाहाबाद पर कब्जा कर लिया और बनारस के राजा चेत सिंह को परास्त कर बनारस को अपने आधीन कर लिया। उसी के उकसाने पर आसफ़उद्दौला ने अपनी माँ बहू बेग़म पर दबाव बढ़ाना प्रारम्भ किया और सन् 1781 में उनकी जागीरें जब्त कर लीं। वारेन हेस्टिंग्स ने आसफ़उद्दौला से सहायता लेकर और अधिक बल के साथ सन् 1782 में मैसूर पर दुबारा आक्रमण कर दिया जिसमें वहां का सुल्तान हैदर अली मारा गया और उसका पुत्र टीपू मैसूर का सुल्तान बना।

आसफ़उद्दौला का विवाह शमसुल निसा बेग़म के साथ हुआ था जो तूरानी मंगोल महिला थीं और देखने में बहुत अधिक सुन्दर थीं। पर किन्हीं कारणों से उनमें और आसफ़उद्दौला में कभी भी मधुर सम्बन्ध नहीं रहे। लन्दन के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के कुछ शोधकर्ताओं के अनुसार आसफ़उद्दौला समलैंगिक थे और दौलत खाने के निकट एक कमसिन लड़कों का हरम बनाये हुये थे, जिसके कारण उनकी पत्नी शमसुल निसा बेग़म ने वारेन हेस्टिंग्स को एक गुप्त संदेश भेज कर अपने रहने के लिये अवध के बाहर व्यवस्था करने का आग्रह किया था, जिसे कम्पनी ने स्वीकार कर उनके लिये इलाहाबाद में रहने का प्रबन्ध कर दिया था। पर इस कथन में कितना दम है इसका कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

सन् 1789 में कम्पनी की फौज ने मैसूर पर तीसरा आक्रमण कर दिया जिसमें टीपू सुल्तान को पराजय का मुंह देखना पड़ा और उसको विवश होकर सन् 1792 में श्रीरंगापटनम् में कम्पनी के साथ सन्धि करनी पड़ी। अंग्रेज़ मैसूर पर अपनी बराबर आँख गड़ाये हुए थे। मौका देख कर सन् 1799 में अंग्रेज़ों ने मैसूर पर चौथा और निर्णायक आक्रमण कर दिया जिसमें श्रीरंगापटनम के युद्ध में टीपू सुल्तान मारा गया और अंग्रेज़ों ने मैसूर पर कब्जा कर लिया।

आसफ़उद्दौला की एक लम्बी बीमारी के बाद 27 नवम्बर सन् 1797 को नगर से दूर बिबियापुर कोठी में मृत्यु हो गयी जो उनकी शिकारगाह थी। आसफ़उद्दौला की मृत्यु के पश्चात् उनके पार्थिव शरीर को आसिफ़ी इमामबाड़े में दफ़न कर दिया गया और उनके कुछ चाटुकारों ने वज़ीर अली नाम के एक व्यक्ति को उनका पुत्र बताकर राजगद्दी पर बैठा दिया जिस पर अंग्रेज़ रेज़िडेण्ट ने घोर आपत्ति की। कम्पनी के गवर्नर जनरल सर

जॉन शोर ने वज़ीर अली को शासक मानने से इनकार कर दिया और उसके स्थान पर आसफ़उद्दौला के सौतेले भाई और हिन्दू राजपूत रानी छतरकुंवर के पुत्र सआदत अली खाँ को बनारस से लाकर अवध का शासक बना दिया, जो पूर्व में विद्रोह करके पहले आगरा फिर बनारस चले गये थे। रानी छतरकुंवर धर्मान्तरण के पश्चात् बेगम आलिया बन गईं।

अंग्रेज़ों के इस कृत्य से सआदत अली खाँ इतने अधिक प्रभावित एवं प्रसन्न हुए कि 10 नवम्बर सन् 1801 को कम्पनी के गवर्नर जनरल रिचर्ड वेसले के साथ एक सन्धि करके लगभग आधा अवध जिसमें इटावा, कानपुर, गोरखपुर, बस्ती इत्यादि जिलों को कम्पनी के नाम कर दिया और अवध के ख़जाने से नज़राने के तौर पर एक काफ़ी बड़ी धनराशि अदा की तथा उसी वर्ष लखनऊ में अंग्रेज़ रेजिडेण्ट के रहने के लिए एक भव्य रेज़ीडेन्सी का निर्माण कराया। अंग्रेज़ों ने इसका भरपूर लाभ लेते हुए मराठों की शक्ति को कम करने के लिए सन् 1803 में लेक के नेतृत्व में दिल्ली पर आक्रमण कर दिया और सन् 1805 तक दिल्ली तथा उसके आस–पास के क्षेत्रों को अपने नियंत्रण में ले लिया, जिसके कारण मुगल सम्राट अक़बर शाह (1806–1837) का अधिकार क्षेत्र केवल लाल किले के प्रांगण तक सिमट कर रह गया।

बहू बेगम का वसीयतनामा

इस तीव्र गति के साथ बदल रहे राजनीतिक घटना क्रम ने स्वभाविक रूप से बहू बेगम को विचलित कर दिया और उन्हें अपने परिजनों तथा विश्वासपात्र कर्मचारियों के भविष्य को लेकर चिन्ता सताने लगी। तब बहू बेगम ने कम्पनी के सम्मुख इस आशय का एक प्रस्ताव रखा कि यदि कम्पनी अवध के नवाब से अलग उनको स्वतंत्र मान्यता दे दे तो वे कम्पनी को अपना उत्तराधिकारी बनाने को तैयार है। जब बहू बेग़म को इस प्रस्ताव के लिये

बहू बेगम

रेज़ीडेण्ट से हरी झण्डी मिली तो उन्होंने 19 अप्रैल सन् 1810 को अपनी जागीरों के निस्तारण के सम्बन्ध में एक वसीयतनामा बनाकर रेज़ीडेण्ट को भेजा जो उसके कार्यालय में सन् 1813 तक पड़ा रहा। इस वसीयतनामे में यह प्राविधान था कि बहू बेगम के जीवनकाल में तमाम सम्पत्ति पर उनका स्वामित्व रहेगा और उनकी मृत्यु के उपरान्त यह तमाम सम्पत्ति पर इस शर्त के साथ कम्पनी का अधिकार होगा कि उनके द्वारा अनुमोदित व्यक्तियों की पेंशनों को सदैव कायम रखा जायेगा। इस वसीयतनामे में बहू बेगम ने जो तीन विशेष प्राविधान किये थे ने कुछ इस प्रकार थे।

अ. वसीयतनामे में तमाम प्राविधानों के अतिरिक्त तीन लाख सिक्के की धनराशि मेरे नौकर दरब अली खां को मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरी कब्र पर मकबरा तामीर करने के लिये दी जाये तथा एक लाख सिक्के की धनराशि दान के रूप में मेरे उपरान्त नायब वज़ीर जो कि विश्वासपात्र धार्मिक व्यक्ति हो, अपने विवेक के अनुसार नजफ़, अशरफ़, कर्बला और अन्य पवित्र स्थानों में देंगे।

ब. उपरोक्त मकबरे के धार्मिक खर्चे को पूरा करने के लिये पंचमार्थ परगना के गांवों को जिनसे राजस्व के रूप में 10,000 रुपये जमा होते हैं, आवंटित किया जायेगा तथा गांवों से प्राप्त अतिरिक्त राजस्व को गरीबों तथा उपरोक्त मकबरे में रहने वालों को दिया जायेगा ताकि वे दिमाग़ी सकून हासिल कर सकें।

स. मुझको प्रिय मेरे भतीजे, लौडियों, दासियों तथा अन्य आश्रितों को मेरी जागीर के राजस्व तथा मेरी व्यक्तिगत सम्पत्ति की आय से नियमित रूप से वृत्तियां दरब अली खां को दी जायें जो उपरोक्त में उस धन को बांटेगा तथा उसकी ओर से उसकी सन्तुति या सुझाव को ग्रहण किया जायेगा तथा उन पर उचित ध्यान दिया जायेगा। उपरोक्त सभी वेतन पेंशनों को स्थापित करके तथा उपरोक्त धनराशि की अदायगी के पश्चात मेरी सम्पत्ति का अवशेष रुपये के रूप में या जवाहरात के रूप में पूर्णतया व निर्बोध रूप से माननीय कम्पनी सरकार की स्वेच्छा पर रहेगा। इसे वह जो चाहे करे व जिसे चाहे दें।

कम्पनी सरकार ने यह वादा किया कि सम्पत्ति पर अधिकार मिलने पर बहू बेगम द्वारा अपने परिजनों तथा आश्रितों को दी गई सभी सहायता जहां तक कम्पनी सरकार पर निर्भर है शीघ्र ही तथा पूर्ण रूप से जहां तक सम्भव हो कार्यान्वित की जायेगी।

बहू बेगम को कम्पनी की ओर से गवर्नर जनरल हेस्टिंग्ज़ ने 29 अगस्त 1813 को सूचित किया कि कम्पनी ने बिना किसी शर्त के स्वीकृति और गारन्टी उनके वसीयतनामे को दे दी है और नायब वज़ीर को भी इससे अवगत करा दिया गया है। उन्हें यह भी विश्वास दिला दिया गया है कि कम्पनी सरकार द्वारा उनको बहू बेगम का प्रमुख वारिस मान लिया जायेगा।

बहू बेगम का वसीयतनामा इस बात का स्पष्ट संकेत देता है कि वे अपने परिजनों तथा आश्रितों की आर्थिक स्थिति तथा सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रति कितनी सजग थीं कि उनके भविष्य की सुरक्षा बनी रहे और उनको भविष्य में किसी के आगे हाथ में कटोरा लेकर भीख मांग कर अपना गुज़ारा न करना पड़े। यह स्वयं सिद्ध करता है कि वे वास्तव में कितनी दूरदर्शी थीं।

बहू बेग़म ने किस व्यक्ति को कितने चाँदी के सिक्के प्रति माह इस अमानती वसीके के रूप में दिये जाये इसकी एक विस्तृत सूची तैयार करवाई और उसको फिर कम्पनी के गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स के अनुमोदन के लिये कलकत्ता प्रेषित किया। यह सूची मोटे तौर पर कुछ इस प्रकार थी। बहू बेग़म की पुत्री लुतफुन निसा तथा महल को सुरक्षा कवच प्रदान करने वाले पंडित लक्ष्मी नारायण कौलशर्ग़ा और उनके अनुज भ्राता पंडित निरंजन दास कौल शर्ग़ा और उनके 14 अन्य सुरक्षा कर्मियों को 10,400 चाँदी के सिक्के प्रति माह। बहू बेग़म के भाईयों मिर्ज़ा अली खाँ तथा सालार जंग और उनके परिजनों को 3,650 चांदी के सिक्के प्रतिमाह बब्बू सुद बच्छुम व उसके अन्य गुप्तचर साथियों को 9,748 चांदी के सिक्के प्रतिमाह। इस प्रकार वसीके के रूप में प्रतिमाह 24,748 चांदी के सिक्के बांटे जाने थे, जिसके लिये बहू बेग़म को 6 प्रतिशत ब्याज़ के हिसाब से कम्पनी के कोषागार में 50,11,469 के लगभग चांदी के सिक्के की धनराशि जमा करनी थी।

जब इस पेचीदा मसले पर विचार विमर्श चल रहा था और उससे सम्बन्धित कानूनी प्रक्रिया की रूप–रेखा बहू बेग़म के सलाहकारों और कम्पनी के उच्च अधिकारियों के मध्य तय की जा रही थी तो एक षड्यंत्र के अन्तर्गत 11 जुलाई सन् 1814 को मध्य रात्रि में सआदत अली खाँ को ज़हर दे दिया गया, जिससे उनकी अकाल मृत्यु हो गई और उनके पुत्र गाज़ीउद्दीन हैदर ने अवध का शासन संभाला। बहू बेग़म भी गम्भीर रूप से बीमार चल रही थीं, जिसके कारण 15 दिसम्बर सन् 1815 को उनकी भी मृत्यु हो गई।

वसीके का वितरण

बहू बेग़म की मृत्यु के बाद कम्पनी के महालेखाधिकारी ने उनकी चल और अचल सम्पत्ति का विधिवत मूल्यांकन किया, जिसमें उनकी अचल सम्पत्ति की कीमत 89,48,916 रुपये आंकी गयी और उनके आभूषणों की कीमत 10,00,000 रु0 आंकी गयी। इस प्रकार उनकी कुल सम्पत्ति का मूल्य 99,48,916 रु0 आंका गया। जब गाज़ीउद्दीन हैदर ने इसमें से 50,11,469 रु0 कम्पनी के कोषागार में जमा करा दिये तो कम्पनी ने उनको बहू बेग़म का वारिस मान लिया और बहू बेग़म की सारी पूंजी उनको सौंप दी। जो धनराशि 6 प्रतिशत ब्याज़ पर वसीका वितरित करने के लिये कम्पनी के कोषागार में जमा कराई गई उसको Oudh Loan First की संज्ञा दी गई। इस प्रकार वसीके का वितरण बहू बेग़म की मृत्यु के पश्चात् सन् 1816 से सम्भव हो सका।

इस वसीके के वितरण का कार्यभार बहू बेग़म की इच्छानुसार उनके विश्वासपात्र दरब अली खाँ नाज़िर को सौंपा गया जो मूल रूप से तोता सिंह नाम का एक हिन्दू राजपूत नवयुवक था और प्रलोभन में अपना धर्मान्तरण करा कर मुसलमान बन गया था। उसकी मृत्यु के बाद इस कार्य का ज़िम्मा अलीबेग वकील को दिया गया तथा उनकी मृत्यु के पश्चात् इस कार्य को लुतफुन निसा बेग़म जो फ़ैजाबाद में रहती थीं को दिया गया। पर वसीके के वितरण में गड़बड़ियों की शिकायत मिलने पर कम्पनी ने इसके उचित वितरण के लिये एक अंग्रेज़ी जानने वाले सुपरिन्टेन्डन्ट को फ़ैज़ाबाद में तथा एक को लखनऊ में नियुक्ति किया ताकि यह कार्य बिना किसी व्यवधान के सुचारू रूप से सम्पादित किया जा सके।

अंग्रेज़ों का नेपाल पर आक्रमण

अंग्रेज़ ठण्डे मुल्क के रहने वाले थे इस नाते उत्तरी भारत की भीषण गर्मी उनको बेचैन करती थी। देहरादून और उसके आस–पास की पहाड़ियों पर प्रद्युमन शाह के शासन काल में सन् 1801 में नेपाल के गोरखों ने आक्रमण करके कब्ज़ा कर लिया था। कम्पनी के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड पिन्टो ने नेपाल को चेतावनी दी कि वह तुरन्त इस क्षेत्र को खाली करे। पर जब इस चेतावनी का कोई प्रभाव नहीं हुआ तो सन् 1814 में इस क्षेत्र को मुक्त कराने के लिए हेस्टिंग्स ने गिलस्पी के नेतृत्व में कम्पनी की फ़ौज भेजी जिसने 31 अक्टूबर, 1815 को इस सम्पूर्ण क्षेत्र को नेपाल के कब्ज़े से मुक्त कराया पर इस युद्ध में गिलस्पी को अपने प्राणों की बलि देनी पड़ी और कम्पनी का काफ़ी ख़ज़ाना खाली हो गया। कम्पनी के ख़ज़ाने की भरपाई के लिये तब हेस्टिंग्स ने गाज़ीउद्दीन हैदर को दिल्ली से सम्बन्ध तोड़ कर अपने को एक स्वतंत्र बादशाह घोषित करने के लिये उकसाया। गाज़ीउद्दीन हैदर ने हेस्टिंग्स की शह पर 19 अक्टूबर 1819 को कैसरबाग स्थित लाल बारादरी में अपनी ताज पोशी करके अपने को अवध का बादशाह घोषित कर दिया और अपने नाम के सिक्के चला दिये। उसने प्रसन्न होकर काफ़ी बड़ी धनराशि कम्पनी के कोषागार में जमा कराई।

तृतीय अवध ऋण

कम्पनी के गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स ने तब बर्मा पर आक्रमण करने की योजना बनाई। उसने बर्मा पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया जिसके कारण कम्पनी का ख़ज़ाना फिर तेजी से खाली होने लगा। गाज़ीउद्दीन हैदर ने तब सन् 1825 में कम्पनी को यह सुझाव दिया कि कुछ धनराशि के बदले अवध का कुछ भाग कम्पनी के द्वारा उनसे ले लिया जाए। उस समय युद्ध के कारण कम्पनी वित्तीय संकट का सामना कर रही थी और अवध का ख़ज़ाना लबालब भरा हुआ था अतः यह प्रस्ताव रखा गया कि बादशाह के ख़ज़ाने से 5 प्रतिशत ब्याज की दर पर एक करोड़ रुपये का कर्ज़ ले लिया जाए और इस कर्ज़ के ब्याज़ को नियमित रूप से बादशाह द्वारा नामित व्यक्तियों को प्रतिमाह वितरित किया जाये। यह प्रस्ताव 17 अगस्त सन् 1825 को एक समझौते के रूप में मान लिया गया, जिसको Oudh Loan Third कहा गया।

ब्याज की 41,666 रुपये 10 आने 8 पाई प्रतिमाह की धनराशि का निम्न प्रकार भुगतान किया जाना तय पाया गया–

1. शाहनजफ़ इमामबाड़े को – 1,137 रु. 10 आने 8 पाई
2. नवाब मुबारक महल – 10,000 रुपये
3. सुल्तान मरियम बेग़म – 2,500 रुपये
4. मुमताज़ महल – 1,100 रुपये
5. सरफ़राज़ महल – 1,000 रुपये
6. नवाब मोतमाउद्दौला – 20,000 रुपये
7. मोतमाउद्दौला की बीबी नवाब बेगम – 2,000 रुपये

ग़ाज़ीउद्दीन हैदर

गाज़ीउद्दीन हैदर की 18 अक्टूबर सन् 1827 को मृत्यु हो गई, जिसके बाद उनके शव को गोमती नदी के दक्षिणी तट पर स्थित शाहनजफ़ इमामबाड़े में दफ़्न कर दिया गया।

विलासता की पराकाष्ठा

गाज़ीउद्दीन हैदर की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र नसीरउद्दीन हैदर ने अवध का शासन संभाला पर वे अपना अधिक समय राजकाज में लगाने के स्थान पर औरतों की संगत में व्यतीत करना अधिक पसंद करते थे। कहा जाता है कि वे अपनी मां बादशाह बेग़म के असली पुत्र नहीं थे अपितु उनका जन्म महल की एक बांदी के गर्भ से हुआ था। बादशाह बेग़म को जब अपने पति के इस बांदी के साथ सम्बन्धों का पता चला तो उन्होंने उस बांदी का कत्ल करा कर उसके बच्चे को अपना पुत्र बता दिया। बादशाह बेग़म ने नसीरउद्दीन हैदर को अपने प्रभाव में रखने के लिए उसके सम्मुख हर प्रकार की सुख–सुविधा तथा विलासता की वस्तुओं का अम्बार लगा दिया। युवा काल में नसीरउद्दीन हैदर बादशाह बेग़म द्वारा एकत्रित की गई सुन्दर लौंडियों के हुजूम में पड़कर हुस्न और शबाव के तिलिस्म में पूर्ण रूप से रम गया।

नसीरउद्दीन हैदर का निकाह दिल्ली के मुग़ल सम्राट अहमदशाह की पौत्री सुल्तान महल के साथ हुआ था। पर उसके पश्चात् उसका सम्बन्ध एक सुख चैन नाम की लौंडी से हो गया और उसका नाम मुन्ना जान के जन्म के बाद अफजल महल रख दिया गया। कुछ समय पश्चात् मुन्ना जान को स्तनपान कराने के लिये एक हिन्दु अन्ना दुलारी रखी गयी। नसीरउद्दीन हैदर ने उसके रूप–रंग पर मोहित होकर उसको अपनी बेगम बना लिया। बेग़म का दर्जा प्राप्त करने के पश्चात् अन्ना दुलारी मलका–ए–जमानी बन गई।

मल्का–ए–ज़मानी ने अपने प्रेमपाश में फांसकर नसीरउद्दीन हैदर को बादशाह बेगम के प्रभाव से निकाल कर गाज़ीउद्दीन हैदर को अपना उत्तराधिकारी मानने को विवश कर दिया। इसी दौर में तवायफ़ों का भी राजदरबार में काफ़ी वर्चस्व हो गया और वे राजकाज में हस्तक्षेप करने लगीं। नसीरउद्दीन हैदर की खास लौंडी धनिया महरी उसकी काफ़ी मुंह लगी थी जिसके ईशारे पर वह सारा कार्य करता था और विभिन्न औरतों के साथ अपने सम्बन्ध स्थापित करता था। औरतों की अधिक सोहबत में रहने के कारण उनमें ज़नानापन आ गया था और वे औरतों की तरह बातें करने और ज़नानखाने में औरतों के लिबास पहनने लगे थे। वे मानसिक रूप से इतने विक्षिप्त हो चुके थे कि हिन्दुओं के जन्माष्टमी के पर्व की तर्ज़ पर इमामों का जन्म दिन मनाने लगे जिसके लिये कुंवारी कन्याओं को फर्जी गर्भधारण कराया जाता था और उनको अछूती बताकर उन पर शाही पहरा बैठा दिया जाता था कि कहीं कोई पुरुष उनके साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित न कर ले। इन अछूतियों को कश्मीरी मुहल्ले के निकट अछूती गली में रखा जाता था। यह अछूतियां एक गर्भवती स्त्री के समान प्रसूति गृह में बैठती थीं और हावभाव के साथ प्रसव पीड़ा का नाटक करके एक काल्पनिक बच्चे को जन्म देती थीं बाद में मौलवियों के सुझाव पर इस प्रथा को समाप्त किया गया।

यों तो नसीरउद्दीन हैदर की अनेक रखैलें थीं जिनमें नीची जाति की स्त्रियां, अधिक थीं पर धनिया महरी उन सब पर भारी थी। वे अपना अधिक समय औरतों की संगत में व्यतीत करते थे। नसीरउद्दीन हैदर ने दिल खोल कर तवायफ़ों को आश्रय दिया, जिसके कारण लखनऊ में

तहज़ीब और तमद्दुन का एक बिलकुल नया वातावरण बना। देह व्यापार के धन्धे के लिये अबोध बालाओं की बड़े पैमाने पर आपूर्ति नेपाल से की जाने लगी। बड़े–बड़े अमीर, उमरा, वसीकेदारों तथा जमीदारों के आवास कोठी वहीं तवायफ़ों के आवास कोठा कहलाने लगे। तवायफ़ें राजकाज में हस्तक्षेप करने लगीं। समाज का उच्च वर्ग अपनी एक ख़ास तवायफ़ रखने लगा, जिससे उसकी प्रतिष्ठा आंकी जाने लगी। उनके संरक्षण में कई नामी–गिरामी तवायफ़ों को बेग़म बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बड़े घरों के लड़के तहज़ीब सीखने के लिये तवायफ़ों के कोठों पर जाने लगे। एक बार एक नवाब साहब अपनी मन पसन्द तवायफ़ के कोठे पर भाव विभोर होकर उसका मुजरा सुन रहे थे तभी कुछ शोहदों में मज़ा खराब करने के लिये वहां मार–पीट शुरू कर दी। बेचारे नवाब साहब अपनी जान बचाने के लिए उस तवायफ़ के बड़े घेरदार लंहगे में छुप गये। फिर स्थिति सामान्य होने पर वह लंहगे से निकल कर चुपचाप उसके कोठे से अपनी कोठी पर चले गये।

प्रिय पाठकों उस काल खण्ड में लखनऊ के समाज के एक विशेष वर्ग पर तवायफ़ों और बेग़मों का बहुत अधिक प्रभाव था। कभी–कभी दोनों में अन्तर कर पाना बहुत अधिक कठिन हो जाता था। क्योंकि उस दौर में कुछ बेग़में माली हालत ख़स्ता होने पर चोरी छुपे धन्धा करने लगीं थीं वहीं कुछ तवायफ़ें राजदरबारियों से शादी रचाकर बेगमें बन बैठीं थीं। वे समाज के इस वर्ग को अपने इशारों पर नचाती थीं। कुछ कश्मीरी पंडित भी उनसे वशीभूत होकर उन्हीं के रंग में रंग गये और उस वातावरण का भरपूर आनन्द प्राप्त करने के लिए उन्हीं के हो गये जैसे महताब राय गुर्टू, बिशम्भरनाथ गंजू, कैलाश नरायण दर, महाराजकृष्ण सर्राफ़, श्याम प्रसाद तैमनी, बिहारी लाल वांटू, जवाहर कृष्ण ज़ारू इत्यादि।

अपने पिता की तर्ज़ पर बादशाह नसीरउद्दीन हैदर ने 5 प्रतिशत ब्याज की दर पर 62.40 लाख रुपये का ऋण कम्पनी के कोषागार में जमा कराया जिसके ब्याज से नवाब ताजमहल को 6,000 रुपये प्रतिमाह नवाब मुख्दर आलिया को 6,000 रुपये प्रतिमाह मलका ज़मानिया को 10,000 रुपये प्रतिमाह नवाब सुल्तान आलिया को 4,000 रुपये प्रतिमाह देने का प्रावधान किया गया। सुल्तान आलिया मलका ज़मानिया की पहले पति से पुत्री थीं।

वैसे भी कहा गया है कि हर चीज़ की अति बुरी होती है। कुछ ऐसा ही नसीरउद्दीन हैदर के साथ हुआ। बहुत अधिक यौनाचार के कारण वे अपना मानसिक संतुलन खो बैठे। वे लौंडियों की सोहबत में तमाम ऊल–जलूल हरक़तें करने लगे जो कम्पनी के अधिकारियों को नागवार गुज़रीं और उन्होंने उनको रास्ते से हटाने की योजना बनानी आरम्भ की। रेज़ीडेन्ट को अपने गुप्तचरों से यह सूचना मिली कि नसीरउद्दीन हैदर अपनी मुंह लगी धनिया महरी के साथ एकान्तवास में दर्शन विलास महल के तयख़ाने में समय व्यतीत करते हैं। रेज़ीडेन्ट ने धनिया महरी को विश्वास में लेकर नसीरउद्दीन हैदर को ज़हर दिलवा दिया, जिससे उनकी 8 जुलाई 1837 को मौत हो गई।

लाल बारादरी में एक ओर जहां दफ़नाने के लिये नसीरउद्दीन हैदर का शव रखा हुआ था वहीं दूसरी ओर अंग्रेज़ उनके 60 वर्षीय बूढ़े और बीमार चाचा मोहम्मद अली शाह की ताजपोशी की तैयारी कर रहे थे। जब इसकी भनक गाज़ीउद्दीन हैदर की पत्नी बादशाह बेग़म को लगी तो वे अपने पोते मुन्ना जान को लाव–लश्कर के साथ लेकर अपने महल से लाल बारादरी पहुँची। उनके कारिन्दों ने रेज़ीडेन्ट के साथ धक्का–मुक्की करके मुन्ना जान की ताजपोशी कर दी। वहां एकत्रित जन समूह आपे से बाहर हो कर हुड़दंग मचाने लगा और बवाल कांटने लगा। जब इसकी सूचना रेज़ीडेन्सी पहुंची तो वहां से ब्रिगेडियर जोहस्टोन एक फौज की टुकड़ी को लेकर मौक़े पर पहुंचा। उसने भीड़ को हट जाने की चेतावनी दी और गोली चलाने का हुक़्म दिया, जिसमें कई व्यक्ति मारे गये। बादशाह बेग़म और मुन्ना जान को गिरफ़्तार करके पहले रेज़ीडेन्सी में रखा गया बाद में उन दोनों को चुनार के किले में नज़रबन्द कर दिया गया और मोहम्मद अली शाह की ताजपोशी कर दी गई।

इस ऊहापाह की स्थिति में नसीरउद्दीन हैदर के शव को बिना किसी शाही तामझाम के चुपके से लाल बारादरी से गोमती पार डालीगंज के कुतुबपुर गांव में एक अमरूद के बाग़ में दफ़्न कर दिया गया जो उस समय एक देहाती ईलाका था जहां आजकल शिया कालेज स्थित है। अवध के नवाबों में केवल नसीरउद्दीन हैदर की कर्बला गोमती के उस पार स्थित है।

छठा अवध ऋण

मुहम्मद अली शाह

मोहम्मद अलीशाह की दो पत्नियां थीं एक का नाम मलका आफ़ाकथा तथा दूसरी का नाम मलका जहां था जो एक आर्थिक रूप से पिछड़े खानदान से थीं। कम्पनी की सेनायें जब अफ़गानों के विरूद्ध दोस्त मोहम्मद खां को परास्त करने के लिये युद्ध कर रही थीं तो दिसम्बर 1838 में मोहम्मद अली शाह ने गवर्नर जनरल औकलैण्ड के सम्मुख रू० 4 प्रतिशत ब्याज की दर से 17 लाख रुपये कम्पनी के कोषागार में जमा करने का प्रस्ताव रखा। साथ ही साथ उन्होंने यह भी कम्पनी सरकार से निवेदन किया कि उनके परिजनों को भविष्य में अवध के शासकों के जुल्म और सितम से बचाने का आश्वासन भी दिया जाये। कम्पनी ने उनके इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इसको Oudh Loan Sixth कहते हैं।

इस 17 लाख रुपये की धनराशि पर 4 प्रतिशत ब्याज की दर से प्राप्त 5,666 रुपये 10 आने 8 पाई को चार वर्गों के व्यक्तियों, शाही महल की सात बेगमों, आठ राजकुमारों और आठ राजकुमारियों तथा आठ अन्य व्यक्तियों को वितरित करने का प्राविधान किया गया।

मोहम्मद अली शाह की लगभग 65 वर्ष की आयु में 16 मई सन् 1842 को मृत्यु हो गई और उनके शव को हुसैनाबाद के इमामबाड़े में दफ़्न कर दिया गया। उसके बाद उनके पुत्र अमज़द अली शाह की ताज पोशी की गई पर वे एक ढीले–ढाले शासक रहे। अंग्रेज़ों ने उनसे सहायता लेकर सन् 1845 में पंजाब पर आक्रमण कर दिया और 9 मार्च 1846 की लाहौर सन्धि के अन्तर्गत वहां के शासन की कमान संभाल ली फिर 17 मार्च 1846 की अमृतसर सन्धि के अनुसार जम्मू के राजा गुलाब सिंह से 75 लाख रुपये लेकर उसको कश्मीर दे दिया।

अमजद अली शाह एक धार्मिक व्यक्ति थे और मौलवियों की संगत में अधिक रहते थे इस नाते हज़रत कहलाते थे। हज़रतगंज उन्हीं ने बसाया था। वे एक लम्बा चोंगा पहनते थे और देखने में बादशाह कम और मौलवी अधिक लगते थे। मलका किश्वर उनकी मुख्य बेगम थीं। उनके अलावा उनकी नवाब खुसरो बेगम, मलका अहद ताज महल तथा मलका गेती उनकी अन्य बेग़में थीं जिनका वसीका दिया जाता है।

अमजद अली शाह की 13 फरवरी सन् 1847 को मृत्यु हो गई और उनके शव को हज़रतगंज में स्थित सिब्तैनाबाद के मकबरे में दफ़न कर दिया गया। उसके बाद वाजिद अली शाह ने अवध की सत्ता की बागडोर अपने हाथों में ली। उनके शासनकाल में सन् 1848 में कम्पनी का गवर्नर जनरल डलहौज़ी बना जिसने अपनी Doctrine of Laplse लागू की जिसके अन्तर्गत उसने सम्पूर्ण भारत पर राज करने की योजना बनाई। सन् 1849 में उसने पंजाब पर आक्रमण कर वहां के महाराजा दिलीप सिंह को राजगद्दी से उतार कर इंग्लैण्ड के बरमिंघम नगर में नज़र बन्द कर दिया।

डलहौज़ी ने तब अवध के अधिग्रहण की योजना बनायी और जेम्स आऊट्रम को लखनऊ का रेज़ीडेन्ट बना कर सन् 1856 में भेजा गया, जिसने वाजिद अली शाह को 4 फ़रवरी 1856 को 12 लाख रुपये की वार्षिक पेंशन लेकर 3 दिन के भीतर राज गद्दी छोड़ने का नोटिस दिया और उनके आना–कानी करने पर 7 फरवरी 1856 को उनको राजगद्दी से उतार कर कलकत्ते भेज दिया गया जहां फ़ोर्ट विलियम्स में उनको नज़रबन्द कर दिया गया।

बादशाह वाजिद अली शाह ने लखनऊ से रुक्सत होते हुए भरे दिल से अपनी रियाया की ओर मुखातिब होकर अर्ज किया।

बड़ी हसरत से दर-ओ-दीवार पर नज़र करते हैं।
खुश रहो अहले वतन हम तो सफ़र करते हैं॥

30 मई 1857 को लखनऊ में ग़दर हो गया। अंग्रेज़ों ने नवाबों के वंशजों और उनके आश्रितों के वंशजों के वसीके बन्द कर दिये और वसीकेदारों को नागरिक अधिकारों से वंचित कर उनकी जागीरें और

जायदादें ज़ब्त कर लीं। अंग्रेज़ों ने मच्छी भवन के किले समेत नवाबों के लगभग 200 महल पूर्ण रूप से ध्वस्त कर दिये। अंग्रेज़ सैनिकों ने बेलगाम होकर जमकर उत्पात मचाया और लूटपाट की। महाराजा कपूरथला की सिख फ़ौज और नेपाल के गोरखों ने अंग्रेज़ों की तरफ़ से लड़ते हुए स्थानीय क्रान्तिकारियों को जम कर काट–पीट डाला, जिसके कारण यह विद्रोह सफ़ल होने से पूर्व ही बहुत बुरे तरीक़े से कुचल दिया गया।

वहीं दूसरी ओर विद्रोहियों ने अपनी क्रान्ति को बल प्रदान करने के लिये दिल्ली के अन्तिम मुग़ल शासक बहादुर शाह ज़फ़र को उसका नेतृत्व करने को कहा जिन्होंने अपनी शायरी के अन्दाज़ में फ़रमाया–

ग़ाज़ियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की।
तख्ते लन्दन तक चलेगी तेग हिन्दुस्तान की॥

कम्पनी ने हडसन को लाल किले पर आक्रमण करने को कहा। हडसन ने बहादुर शाह ज़फ़र के पुत्रों को मौत के घाट उतार कर उनको गिरफ्तार कर लिया और कहा–

दमदमें में दम नहीं अब खैर मांगो जान की।
अब ज़फ़र ठण्डी हुई शमशीर हिन्दुस्तान की॥

अंग्रेज़ों ने अन्तिम मुग़ल सम्राट बहादुर शाह 'ज़फ़र' को रंगून में नज़रबन्द कर दिया जहां बेबसी और लाचारी का जीवन व्यतीत करते हुए सन् 1862 में उनकी मृत्यु हो गई। अपनी मृत्यु से पूर्व अपनी व्यथा को उन्होंने कुछ इस प्रकार व्यक्त किया।

कितना है बद नसीब ज़फ़र दफ़्न के लिये।
दोगज़ ज़मीं भी न मिली कुए-यार में॥

अंग्रेज़ों द्वारा 1857 की क्रान्ति को पूर्ण रूप से कुचलने के पश्चात् प्रथम वाईसराय लार्ड कैनिंग ने इलाहाबाद के किले से 1 नवम्बर सन् 1858 को ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया का शाही फ़रमान पढ़ कर सुनाया जिसमें कम्पनी से भारत का शासन ब्रिटिश सरकार द्वारा लेने की बात कही गई थी। वसीकेदारों को उनके वसीकों का वितरण उचित जांच पड़ताल के

पश्चात् सन् 1859 से सम्भव हो सका। उस समय भारत की राजधानी इलाहाबाद थी। इस प्रकार भारत में पुनः मुगल शासन स्थापित करने का मम्मू खां का स्वप्न साकार नहीं हो सका। जिसने बेगम हज़रत महल को मोहरा बनाकर सारा खेल खेला था।

महारानी विक्टोरिया

ग़दर के पश्चात् स्थितियां सामान्य होने पर लेफ्टिनेन्ट गवर्नर डिमोन्टमोरेन्सी के 28 मई 1864 के आदेश के अनुपालन में वसीके से सम्बन्धित विवादों को जांच पड़ताल के बाद निपटाने के लिये लखनऊ के कमिश्नर के आधीन विलियम्स नाम के एक प्रशासनिक अधिकारी की नियुक्ति की गई जो सूत्रों के अनुसार रौशनउद्दौला कचहरी में बैठता था पर वसीकेदारों को उनके वसीके का नग़द भुगतान सरकार के कोषागार से किया जाता था।

वसीका कार्यालय की स्थापना

भारत सरकार के 4 अप्रैल सन् 1877 के आदेश के अनुसार लखनऊ के हुसैनाबाद में वसीके का सारा काम–काज देखने के लिए एक अलग कार्यालय स्थापित किया गया, जिसे लखनऊ के कमिश्नर के आधीन कर दिया गया। फिर 4 अप्रैल सन् 1887 को प्रान्त के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर का आदेश हुआ कि वसीके का सारा कार्य सिटी मजिस्ट्रेट की देख–रेख में पहले की भांति किया जायेगा।

15 जुलाई सन् 1895 को यह आदेश हुआ कि वसीके का सारा कार्य एक अंग्रेज़ी जानने वाला डिप्टी कलेक्टर करेगा। प्रान्त की सरकार के 15 अप्रैल सन् 1930 के शासनादेश में यह प्राविधान किया गया कि सेवा निवृत्त डिप्टी कलेक्टर को ही वसीका अधिकारी के रूप में नियुक्त किया जा सकता है।

वर्तमान समय में वसीका कार्यालय अल्पसंख्यक आयोग के आधीन कार्य कर रहा है, जो उचित नहीं है। सूत्रों के अनुसार सबसे अधिक वसीका 800 रुपये प्रति माह दिया जाता है। और सबसे कम वसीका 1 रुपया 4 आना प्रतिमाह दिया जाता है, जो वास्तव में वसीका देने की भावना के एकदम प्रतिकूल है।

क्या आज की मंहगाई में कोई भी वसीकेदार 1 रुपये 4 आने प्रतिमाह में अपने परिवार का भरण–पोषण कर सकता है? यह उसके साथ एक भद्दा मज़ाक है। यही कारण है कि अब वसीकेदारों को जो धनराशि वितरित की जाती है, उससे कई गुना अधिक वसीका कार्यालय के रख–रखाव और वहाँ के कर्मचारियों के वेतन पर व्यय की जाती है, जो स्वयं एक बहुत बड़ा विरोधाभास है। इस सब का औचित्य क्या है? यह स्पष्ट नहीं है।

वहीं दूसरी ओर सबसे बड़ा प्रश्न यह भी है कि जब लखनऊ में बेग़म हज़रत महल ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध जमकर युद्ध लड़े तो अंग्रेज़ों ने नवाबों के वंशजों और उनके आश्रितों के वंशजों को वसीका देना क्यों जारी रखा? सूत्रों के अनुसार नवाबों ने इस विद्रोह में वास्तव में भाग नहीं लिया। वाजिद अली शाह की माँ मलका किश्वर ने लन्दर जाकर स्वयं ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया को यह ज्ञापन दिया था कि अवध के शाही घराने से इस विद्रोह का कुछ लेना देना नहीं है। और वह आपका अब भी वफ़ादार और फ़रमाबरदार है। इस नाते अवध के शासन की बाग डोर नवाब वाजिद अली शाह को या उनके वली अहद मिर्ज़ा हामिद अली को सौंपी जाये। यह साफ़ दर्शाता है कि अवध के शाही ख़ानदान और बेग़म हज़रत महल के बीच सम्बन्ध समाप्त हो चुके थे तभी अंग्रेज़ों ने वाजिद अली शाह की पेंशन स्वीकृत की और अवध के वसीकेदारों को वसीके का वितरण जारी रखा। वह एक प्रकार से नवाबों के वंशजों का भरण–पोषण करते रहे ताकि वह पुनः कहीं अंग्रेज़ों के विरुद्ध लामबन्द होकर विद्रोह न कर दें।

15 अगस्त सन् 1947 को भारत में ब्रिटिश शासन का अन्त हुआ जब अन्तिम वाईसराय लार्ड माऊंटबेंटन ने शासन की बागडोर स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू के हाथों में सौंपी।

वसीका कार्यालय का तब नियन्त्रण भारत सरकार के गृह मंत्रालय द्वारा किया जाता था। इसके पश्चात् इसका नियन्त्रण 1 अप्रैल 1957 से उत्तर प्रदेश शासन के सामान्य प्रशासन अनुभाग के द्वारा नियन्त्रित किया जाता रहा। वर्तमान समय में इसका नियन्त्रण अल्प संख्यक कल्याण एवं वक़्फ विभाग द्वारा किया जा रहा है।

वसीकों का वर्गीकरण

वर्तमान समय में विभिन्न प्रकार के वसीकों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया गया है।

1. अमानत
2. ज़मानत
3. तीन महल (परिवार)
4. प्रथम अवध ऋण
5. तृतीय अवध ऋण
6. छठा अवध ऋण

इस समय सूत्रों के अनुसार 1,300 वसीकेदारों को बहू बेग़म का अमानती गाज़ीउद्दीन हैदर और मोहम्मद अली शाह का ज़मानती तथा मिर्ज़ा अली खाँ का महल, सालार जंग का महल और कासिम अली खाँ का महल समेत आठ प्रकार का वसीका एवं लगभग 561 अमानती नोट वसीकेदारों को दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त मलका जहाँ, मलका किश्वर, मिर्ज़ा जव्वाद, मलका गेती, ताजदार बहू मलका अहद प्रथम, मलका अहद द्वितीय, अफसर बहू, अमीनुद्दौला, मोईनुद्दौला, बच्चू बेग़म, मोहम्मद मीर दरोग़ा व हुसैन अली खाँ मौला सहित 13 प्रकार के अमानती नोट पर ब्याज भुगतान किया जाता है। इसके अतिरिक्त 11 प्रकार की राजनैतिक पेंशनों एवं वसीकेदारों की मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकारियों के दावों का निस्तारण जाँच–पड़ताल के पश्चात् विधि के अनुसार किया जाता है।

सूत्रों के अनुसार वर्तमान समय में 710 वसीकेदारों को 1 से 10 रुपये तक प्रतिमाह, 367 वसीकेदारों को 11 से 50 तक प्रतिमाह, 201 वसीकेदारों को 51 से 100 रुपये प्रतिमाह, 20 वसीकेदारों को 101 रुपये से 400 रुपये

तक प्रतिमाह तथा 2 वसीकेदारों को 401 रुपये से 800 रुपये तक प्रतिमाह भुगतान किया जाता है। इसमें सबसे अधिक वसीका 984 रुपये 97 पैसे प्रतिमाह सैय्यद अफ़सर हुसैन नक्वी तथा सबसे कम वसीका एक रुपया 20 पैसे प्रतिमाह बीबी रानी को मिलता है।

वसीका और शर्ग़ा ख़ानदान

कश्मीरी पंडितों में केवल शर्ग़ा ख़ानदान अवध के ख़जाने का वसीकेदार रहा है जिसके हर सदस्य को पिछली सात पीढ़ियों से बहू बेगम का वसीका मिल रहा है। इस ख़ानदान के पंडित दुर्गा प्रसाद शर्ग़ा का अपना रुतबा था। वे उर्दू तथा फ़ारसी भाषा के विद्वान थे और मलका किश्वर के खास मुशीरकार थे जिनके साथ वे महारानी विक्टोरिया को 1856 में ज्ञापन देने गये थे और जिसके कारण अंग्रेज़ों ने उनको विद्रोही बता कर उनका वसीका बन्द कर दिया था जो बाद में सन् 1859 में सिटी मजिस्ट्रेट कार्निगी के आदेश से पुनः चालू हो सका। वे बादशाह वाजिद अली शाह के उस्ताद भी रहे। उनके पास काला भुजंग अरबी नस्ल का एक घोड़ा था जो दुलकी चाल से चलता था और जिस पर ख़िलत पहन कर और तलवार लगाकर वे दरबार जाते थे साथ में खिदमदगार चलता था। खिदमतगार बारीक मलमल की सफ़ेद अचकन का चुस्त चूड़ीदार पैजामा पहने होता था जिसके सर पर सफ़ेद दुपल्ली टोपी होती थी। उसके हाथ में चांदी का एक खासदान होता था जिसमें महीन–महीन नसों की सफ़ेद मघईया पान की छोटी–छोटी सख्त गिलौरियां बड़े सलीके के साथ केवड़े में बसी हुई लाल तूल के कपड़े में सजी होती थीं जो मेहमानों को बड़े अदब के साथ एक महीन सी चांदी की चिमची से किमाम लगाकर पेश की जाती थी जिनकी महक से दिमाग तरोताज़ा हो जाता था।

यों तो वसीका देने के लिये उत्तराधिकारी का चयन मुस्लिम लॉ के अनुसार किया जाता है जिसमें दत्तक पुत्र के लिये कोई प्राविधान नहीं है। केवल पंडित विश्वनाथ शर्ग़ा इसका अपवाद थे जिन्होंने पंडित नर सिंह दत्त शर्ग़ा के दत्तक पुत्र होते हुए विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत सन् 1898 में मुकदमा लड़कर वसीका प्राप्त किया। वर्तमान समय में शर्ग़ा खानदान के जो सदस्य वसीका पा रहे हैं उनमें कुछ प्रमुख नाम इस प्रकार हैं डॉ.

बैकुण्ठ नाथ शर्ग़ा, डॉ. अमृत नाथ शर्ग़ा, अर्जुन शर्ग़ा, विनय शर्ग़ा, श्रीमती सरोज दर, डा. सीता ज़ुत्शी, कृष्ण मोहन तिक्कू, श्रीमती राजलक्ष्मी दर, श्रीमती चन्दा बकाया।

नवाब शब्द का दुरुपयोग

नवाब शब्द वास्तव में अरबी भाषा के शब्द नायब का बिगड़ा हुआ स्वरूप है जिसका अर्थ उप या डिप्टी होता है। जब सन् 1819 में गाज़ीउद्दीन हैदर ने अपने को बादशाह घोषित कर दिया तो उनका नायब वज़ीर का पद स्वतः समाप्त हो गया। अतः अब अपने नाम के साथ नवाब शब्द का प्रयोग करना न तर्कसंगत है और न न्यायोचित है। अब कुछ फर्जी लोग अपने को नवाब बताकर जनता को गुमराह कर रहे हैं।

वसीकेदारों के शगल

लखनऊ के व्यापक समाज में वसीकेदारों का एक ऐसा तबक़ा पनपा जिसने कभी किसी की नौकरी करना गंवारा नहीं किया और सदा उसको अपनी तौहीन समझा। इन वसीकेदारों ने अपना समय काटने के लिए नये–नये शगल ईजाद किये। कुछ ने मशहूर तवायफ़ों के कोठों पर रंगीन मुजरे की महफिलें सजानी शुरू की। जो बाद में शाम–ए–अवध के नाम से जानी गई। उस काल में उमराव जान, बड़ी चौधराइन, छोटी चौधराइन,

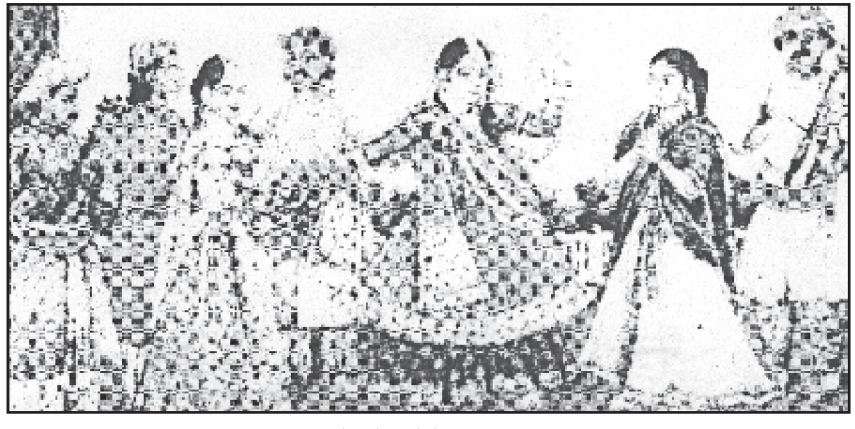

तवायफ़ों के कोठे का एक दृश्य

नाज़नीन, बद्रे मुनीर, कल्लो बाई, अख्तरी बाई, ज़रीना, दिलरुबा, महताब बानो, हुस्नपरी, छप्पनछुरी, फिरदौस जद्दनबाई, गौहर, शबनम तथा नाज़नीन जैसी तवायफ़ों के कोठें लखनऊ की तहज़ीब का मरक़ज़ माने जाते थे, जिनको वसीकेदारों का पूरा संरक्षण प्राप्त था। वहीं कुछ वसीकेदारों ने विभिन्न बाज़ियों को अपना शगल बनाया था। जैसे– पतंगबाजी, बटेरबाजी, कबूतरबाज़ी वैग़रह वहीं कुछ वसीकेदार मुर्गों तथा मेढ़ों की लड़ाई पर दांव लगाते तो कुछ हुक्के की गुड़गुड़ाहट के साथ शतरंज, गंजीफा, चौसर, पच्चीसी, की बाज़ियों

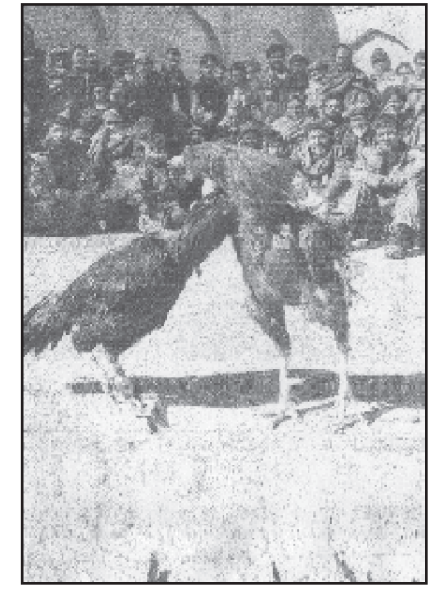

मुर्गों की लड़ाई का दृश्य

लखनवी बेगम

का पूरा लुफ्त लेते। नाजुक मिज़ाजी इतनी कि मखमल पर नंगे पांव चले तो पैरों में छाले पड़ जायें, और यदि केला खायें तो जुकाम हो जाये। इस दौर में कुछ वसीकेदार कड़की में इक्का और तांगा भी चलाने लगे थे जो बाद में गुमनामी की जिन्दगी बिताने लगे। एक वसीकेदार जिनका 700 रुपया प्रतिमाह वसीका था, सात सौ वाले नवाब कहलाते थे। एक मलका गेती के वसीकेदार अमीनाबाद में हमेशा एक किमखाब की अचकन पहनकर, छतरी लगाकर चलते थे, जिनको लोग छतरी वाले नवाब के नाम से जानते थे। एक वसीकेदार ने सन् 1910 में लखनऊ के अंग्रेज़ कलेक्टर को चाय नोटों से पानी गर्म करके पिलाई। वे नवाब सन् 10 के नाम से जाने गये। एक वसीकेदार सड़क पर दोनों तरफ थूकते हुये चलते थे और इसलिए नवाब थूकू कहलाते थे। उनको देखते ही लोग दाँय–बाँय हो जाते थे। एक वसीकेदार बहुत अधिक दुबले–पतले थे, वे नवाब झींगुर कहलाते थे। उच्च शिक्षा के आभाव में माली हालत ख़स्ता हो जाने पर एक वसीकेदार चौक कोतवाली के सामने दही–फुल्की का खोंचा लगाने लगे, वे नवाब फुल्की कद्र कहलाते थे। इस प्रकार वसीकेदार लखनऊ की एक नयी संस्कृति के संवाहक और पोषक बने। जब नवाब फुल्कीकद्र की हवेली को ध्वस्त कर चौक की कोतवाली बनायी गयी तो उन्होंने कुछ यूं फरमाया।

चल दिये फुल्की कद्र, उनका ज़माना हो गया।
ख़ुद गई बारादरी, ड्योढ़ी पर थाना हो गया॥

वसीकेदारों की लम्बी परम्परा का इतिहास बहू बेग़म और उनके पुत्र आसफ़उद्दौला के मध्य उपजे मतभेदों तथा आपसी रिश्तों में आई कड़वाहट के कारण रचा गया, जिसको अवध में अन्य शासकों ने पोषित और पल्लवित किया क्योंकि उनको सदैव यह भय और आशंका बनी रहती थी कि पता नहीं कब उनसे अंग्रेज़ अप्रसन्न होकर उनको राजगद्दी से उतार कर किसी अन्य व्यक्ति की ताजपोशी कर दें जो उनके परिजनों के लिए चरस बो कर उनका जीना मुहाल कर दे। अतः अपने परिजनों की आर्थिक

सुरक्षा और उनको अंग्रेज़ों का संरक्षण प्रदान करने के लिए अवध के शासकों ने वसीके को एक सुरक्षा कवच के रूप में अपनाया। उस काल खण्ड में राज घरानों में कुर्सी की ख़ातिर षड्यंत्र रचना एक आम बात थी, जिनमें एक दूसरे को नीचा दिखाने में हर सम्भव प्रयास किया जाता था और हत्याऐं तक कर दी जाती थीं। इसी नाते अंग्रेज़ों ने अनुबन्ध पत्र में यह लिखित अश्वासन दिया था कि वे वसीकेदारों को सुरक्षा प्रदान करेंगे ताकि भविष्य का कोई भी शासक उनका अहित न कर सके।

अंग्रेज़ चले गये, राजशाही समाप्त हो गई। भारत अब एक स्वतंत्र गणतांत्रिक देश है। फिर इन वसीकेदारों को कौन और किसके विरूद्ध सुरक्षा प्रदान कर रहा है और वसीकेदारों को अब किससे भय है क्या उत्तर प्रदेश सरकार कम्पनी द्वारा किये गये अनुबन्ध पत्र के प्राविधानों का उनमें निहित भावनाओं के अनुकूल पालन कर रही है या फिर केवल तीतर–बटेर वाली स्थिति है कि जो मीठा लगा उसे खा लिया और जो खट्टा लगा उसे थूक दिया। क्या इस प्रकार का दोहरा मापदण्ड तर्कसंगत और न्याय संगत है। वसीका चाँदी के सिक्कों में दिया जाता था अब काग़ज़ के नोटों में दिया जाता है। क्या एक चांदी के सिक्के का मूल्य एक काग़ज़ के नोट के बराबर है। क्या इसको वसीकेदारों का शोषण कहना अनुचित होगा जब प्रतिदिन सेंसेक्स कुलाचें भर रहा हो और बीस हज़ार का आंकड़ा पार कर गया हो और वसीकेदारों का वसीका उसी अनुपात में बढ़ने के स्थान पर उल्टा घट रहा हो। इस दशा के लिये कौन ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है।

आंसूओं के गिरने की आहट नहीं होती।
दिल के टूटने की आवाज़ नहीं होती॥
अगर होता ख़ुदा को एहसास दर्द का।
तो उसे दर्द देने की आदत नहीं होती॥

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. The Life and Times of the Nawabs of Lucknow - Ravi Bhatt-2007.
2. शतरंज के मोहरे – अमृत लाल नागर–1959
3. Palace Culture of Lucknow - Amir Hasan
4. ग़दर के फूल – अमृत लाल नागर–1957
5. कश्मीरी पंडितों के अनमोल रत्न (छः खण्ड) – डॉ. बैकुण्ठ नाथ शर्ग़ा, 1999–2005
6. लखनऊ के कश्मीरी पंडित डॉ. बैकुण्ठ नाथ शर्ग़ा – 2007
7. Historic Lucknow, Sidney Hay, New Delhi 1997.
8. The Pictorial Luknow, P.C. Mukherjee - 2003
9. The Begums of Oudh, K.S. Santha - 1980
10. वसीका मैनुअल उत्तर प्रदेश सरकार
11. अवध में नवाबी शासन का इतिहास – डॉ. जगदीश सहाय–1982
12. शरगा–पुराण – डॉ. बैकुण्ठ नाथ शर्ग़ा, 2007
13. Treaties of Oudh - A.C. Aitchinson.
14. लखनऊनामा – डॉ. योगेश प्रवीन
15. भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का प्रथम वीर नायक – अक्षय वीर दीक्षित

आवरण चित्र : नवाब आसफ़उद्दौला, ब्रिटिश रेज़ीडेन्ट गबरील हारपर तथा क्लाड मार्टिन मुर्गों की लड़ाई का आनन्द लेते हुए।